**ओ३म्**

**‘सृष्टि का आरम्भ और कृषि विज्ञान’**

**-मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

ज्ञान और विज्ञान परस्पर पूरक शब्द हैं। वस्तुओं का साधारण ज्ञान सामान्य ज्ञान के अन्तर्गत आता है और उनका विशेष ज्ञान विज्ञान कहलता है। कृषि का तात्पर्य मनुष्यों के आहार के पदार्थो यथा फल, वनस्पतियां व अन्न आदि का अच्छा व गुणवत्तायुक्त प्रचुर मात्रा में उत्पादन करने को कह सकते हैं। सृष्टि के आरम्भ मे जब प्रथम मनुष्यों अर्थात् स्त्री व पुरुषों का जन्म हुआ होगा तो उन्हें श्वांस के लिए वायु, पिपासा की शान्ति के लिए शुद्ध जल व क्षुधा निवृत्ति के लिए भोजन की आवश्यकता पड़ी होगी। हम वेदादि ग्रन्थों के अध्ययन से यह समझ पायें हैं कि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य युवावस्था में उत्पन्न हुए थे। इसका कारण यह है कि यदि वह बच्चे होते तो उनका पालन-पोषण करने के लिए माता-पिता की आवश्यकता होती जो कि आरम्भ में नहीं थी और यदि वह वृद्ध उत्पन्न होते तो उनसे सन्तानों आदि के न होने से सृष्टि का क्रम आगे नहीं चल सकता था। अतः यह मानना होगा और यही सत्य है कि सृष्टि क आरम्भ में मनुष्य युवावस्था में पृथिवी माता के गर्भ से उत्पन्न हुए थे। दूसरा प्रश्न यह है कि पृथिवी की आरम्भ अवस्था कैसी थी और सृष्टि कहां उत्पन्न हुई थी। इसका उत्तर यह मिलता है कि मानवोत्पत्ति के समय पृथिवी पूर्णतयः निर्मित होकर सामान्य स्थिति में आ चुकी थी। इस पर वायु सर्वत्र बह रही थी, शुद्ध जल भी यत्र-तत्र वा स्थान-स्थान पर नदियों, नहरो व जल स्रोतों में उपलब्ध था। मनुष्यों के निकट ही फलों के वृक्ष थे जिनमें नाना प्रकार के फल लगे हुए थे। आस पास गौवें भी थी जो दुग्ध देने वाली थी। मनुष्यों के उत्पत्ति स्थान तिब्बत वा त्रिविष्टिप के पास की समतल भूमि पर खाद्य अन्न व वनस्पतियां भी लहलहा रहीं थी। सृष्टि के आरम्भ में चार ऋषियों अग्नि, वायु, आदित्य और अंगिरा को चार वेदों का ज्ञान ईश्वर से मिला। इस वेद ज्ञान को ईश्वर ने चार ऋषियों के अन्तःकरणों में स्थापित किया। वेदों की भाषा व वेदों के अर्थ का ज्ञान भी ऋषियों को प्राप्त हुए ज्ञान में सम्मिलित था। हम समझते हैं कि ऋषियों से इतर स्त्री व पुरुषों को भी आवश्यकतानुसार परस्पर व्यवहारार्थ भाषा ज्ञान सहित भोजन आदि करने कराने का ज्ञान भी सृष्टिकत्र्ता द्वारा अवश्य दिया गया होगा। जिस ईश्वर ने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड वा सृष्टि सहित मनुष्य आदि सभी प्राणियों को बनाया वह आदिकालीन मनुष्यों को भोजन व परस्पर व्यवहार का ज्ञान उनके अन्तःकरण वा आत्मा में न दे, ऐसा मानना यथार्थ को झुठलाने के समान है। यह ज्ञान भी अवश्य ही दिया गया था। इस तथ्य को मानने पर सृष्टि के आदि काल संबंधी सारी गुत्थियां सुलझ जाती है। विधि वा कानून का सिद्धान्त है कि वह Benefit of doubt का लाभ पीडि़त व्यक्ति को देता है। सृष्टि के आरम्भ में जिन प्रश्नों के उत्तर नहीं मिलते उसका लाभ ईश्वर विषयक सिद्धान्त को मानकर ही करना होगा। संसार के प्राचीनतम ग्रन्थ वेद और वैदिक साहित्य इस विषय में प्रमाण हैं और इसका अन्य कोई विकल्प हमारे व किसी के पास नहीं है। संशय पालने व नाना कल्पनायें करने से कोई लाभ नहीं है। इस प्रकार ईश्वर से वेदों का ज्ञान, मनुष्यों को व्यवहार व भोजन आदि का ज्ञान तथा सृष्टि में उत्पन्न व उपलब्ध भोज्य व अन्य पदार्थों का ज्ञान आरम्भ में ईश्वर वा वेदों से ही मिला था जिसमें कृषि का ज्ञान भी सम्मिलित है।

वेद मन्त्रों के अर्थ जानने की अपनी प्रक्रिया है। इसके लिए अध्येता को संस्कृत की आर्ष व्याकरण पद्धति से मन्त्र का पदच्छेद कर उसके सम्भावित अर्थों पर विचार करना पड़ता है। वर्तमान में निरुक्त एवं निघण्टु ग्रन्थ हैं जिससे पदों के अर्थ व उनके निर्वचन देख कर सार्थक अर्थ ग्रहण किये जाते हैं। अर्थ जानने के लिए बुद्धि की ऊहा शक्ति से चिन्तन, मनन कर व ध्यान द्वारा अर्थ में प्रवेश करना होता है। यदि पूर्व ऋषियों व विद्वानों के लिए हुए अर्थ उपलब्ध हो तो उनका भी सहयोग लेकर यथार्थ अर्थ ग्रहण किया जाता है। ऐसा ही कुछ-कुछ वेदार्थ का प्रकार सृष्टि के आरम्भ व उसके बाद रहा है। वेद के अध्येता को यह भी निश्चय करना चाहिये कि वेद ईश्वरीय ज्ञान होने सहित सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। इसमें सृष्टि क्रम वा ज्ञान-विज्ञान विरुद्ध कोई बात नहीं है। यदि कहीं भ्रम हो तो उसे अपनी ऊहा व चिन्तन-मनन आदि से दूर करना चाहिये। विचार व चिन्तन करने पर यह तथ्य भी स्पष्ट होता है कि सृष्टि के आरम्भ में ईश्वर ने कुछ सौ या कुछ हजार की संख्या में स्त्री व पुरुषों को उत्पन्न किया होगा। उस ईश्वर ने चार ऋषियों को वेद ज्ञान दिया तथा इन चार ने अन्य ऋषि ब्रह्मा को इन चारों वेदों का ज्ञान दिया। परस्पर संवाद व संगति से पांचों ऋषि वेदों के पूर्ण ज्ञानी हो गये थे, यह अनुमान होता है। इन पांच ऋषियों ने शेष मनुष्यों को एकत्र कर भाषा व वेदों का आवश्यकतानुसार ज्ञान दिया होगा। इस कार्य के अतिरिक्त इन पांच ऋषियों के पास अन्य कोई कार्य करने के लिए था ही नहीं। यह भी ज्ञात होता है कि यह पांचों ऋषि योगी थे। यह प्रातः व सायं ईश्वर का घंटों ध्यान व चिन्तन करते थे। इस अवस्था में इन्हें ईश्वर से अपने सभी प्रश्नों व शंकाओं के उत्तर मिल जाते थे। इससे कृषि कार्य सम्पादित करने में इन्हें किसी विशेष समस्या से झूझना नहीं पड़ा होगा। आज भी हम यही तो करते हैं कि हमें जिस बात का ज्ञान नहीं होता उसके लिए हम अन्य अनुभवी व वृद्धों की शरण में जाकर पूछताछ कर व निजी ध्यान-चिन्तन-मनन से समस्या का हल करते हैं। इसी प्रकार से कृषि विज्ञान विकसित हुआ और महाभारत काल तक उन्नति को प्राप्त होता गया।

आईये ! कुछ वेद प्रमाणों पर भी विचार करते हैं। यजुर्वेद 23/46 में कहा गया है **‘भूमिरावपनं महत्’** अर्थात् **(बीज) बोने का-कृषि का-महान् स्थान भूमि ही है।** इससे हमारे प्रथम पीढ़ी के पूवर्जों को यह ज्ञान मिल गया कि अन्न आदि खाद्य पदार्थ प्राप्त करने के लिए उन्हें पृथिवी में बीज वपन करने होंगे। यजुर्वेद के मन्त्र 4/10 में कहा गया है **‘सुसस्याः कृषीस्कृधि’** अर्थात् **उत्तम अन्नों की कृषि करें एवं करावें।** **मंत्र में सुसस्या कहकर खराब अन्न उत्पन्न करने का निषेध किया गया है।** खराब अन्न की उत्पत्ति का समाज के जीवन पर प्रतिकूल ही प्रभाव पड़ता है। **‘अन्नं वै प्राणिनां प्राणाः’** कहकर बताया गया है कि **अन्न प्राणियों का जीवन है अर्थात् प्राण है। प्राण ही जीवन एवं जीवन ही प्राण होता है। प्राण नहीं तो जीवन नहीं और जीवन नहीं तो प्राण नहीं। ‘अन्नं प्राणस्य षड्विंशः’ अन्न हमारे प्राण का छब्बीसवां भाग बनता है,** अतः यदि हम खराब-दूषित या मलिन अन्न का सेवन करेंगे तो उसका प्रभाव हमारे जीवन पर अनिवार्य रूप से खराब ही पड़ेगा। जिस प्रकार विषयुक्त अन्न के सेवन से शरीर विषाक्त हो जाता है और जीवन की हानि होती है उसी प्रकार दूषित अन्न के सेवन करने से समाज के व्यक्तियों के शरीर एवं मन के संस्कार भी दूषित हो जाते हैं। बुद्धि भी दूषित हो जाती है। अतः कृषि के कार्य को उत्तम रीति से एवं सुसंस्कारपूर्वक करना चाहिए। यहां यह भी ध्यातव्य है कि वर्तमान समय में अधिकाधिक कृषि उत्पादन पर ही ध्यान दिया जाता है न कि अन्न की गुणवत्ता, पवित्रता, शुद्धता व विषमुक्तता पर जिसके बुरे परिणाम रोगों व अल्पायु के रूप में हमारे सामने हैं।

कृषि को अच्छी प्रकार करने के वेदों ने अनेक उपाय बतायें हैं वा मनुष्यों का मार्गदर्शन किया है। वेद के अनुसार कृषि कार्य में यज्ञ का उपयोग करना चाहिये। यजुर्वेद 18/9 में कहा है **‘कृषिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्’** अर्थात् **कृषि के लिए भूमि को उपयोगी बनाते समय यज्ञ का प्रयोग करो। यज्ञ से भूमि कृषि कार्य में समर्थ व शक्तिशाली बनेगी। यज्ञ करने से भूमि की उत्पादन सामर्थ्य में वृद्धि होगी। कृषि कार्य में असमर्थ भूमि में यज्ञ करने से वह कृषि के लिए समर्थ होगी और कृषि भूमि में यज्ञ करने से उसकी उर्वरा शक्ति में वृद्धि होगी।** यज्ञ से भूमि माता कृषि के लिए समर्थ बने, यह प्रार्थना यजुर्वेद 18/22 मन्त्र **‘पृथिवी च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।’** में की गई है। **यज्ञ किए बिना पृथिवी को जीवन नहीं मिलेगा। यज्ञ करने से भूमि में विद्यमान तत्व एवं द्रव्य शक्ति सम्पन्न होते हैं। कृषि का वृष्टि वा वर्षा से गहरा सम्बन्ध है।** यजुर्वेद 18/9 मन्त्र में कहा गया है **‘वृष्टिश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्’** **कृषि के लिए वर्षा जल की आवश्यकता है वह वर्षा जल भी यज्ञ के द्वारा समर्थ होना चाहिये। कृषि के लिए जो जल वृष्टि से प्राप्त हो वह यज्ञ से सुसंस्कृत हो और उसी वृष्टि जल से पूर्ण नदी, तालाब, कूवे, बावड़ी, रूीलें भी हों जिससे वृक्ष, वनस्पतियों को सदा यज्ञ का जल प्राप्त होता रहे। प्रकृतिस्थ वृक्ष व वनस्पतियों को जो वायु प्राप्त हो वह भी यज्ञ द्वारा सुसंस्कृत हो।** इस विषयक यजुर्वेद मन्त्र 18/17 **‘मरुतश्च मे यज्ञेन कल्पन्ताम्।’** **अर्थात् वायु भी यज्ञ के द्वारा समर्थ हो।** कृषि कार्यों से संबंधित यजुर्वेद का एक मन्त्र 9/22 **‘नमो मात्रे पृथिव्यै नमो मात्रे पृथिव्या ..... कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा।।’** भी महत्वपूर्ण है। इसमें कहा गया है कि **हे भूमि माता ! तुझे प्रणाम हो। हे भूमि माता ! तुझे शतशः वन्दन है। तुझे कृषि के लिए हम स्वीकार करते हैं। तुझे अपनी रक्षा के लिए ग्रहण करते हैं। तुझे ऐश्वर्य के लिए हम चाहते हैं और तुझे अपने पोषण के लिए माता क तुल्य वन्दनीय समझते हैं।**

इस लेख में हमने जो विवरण प्रस्तुत किया है उसके आधार पर यह निश्चित है कि कृषि का आरम्भ सृष्टि के आरम्भ में परमात्मा के मिले वेदों के ज्ञान वा उनकी शिक्षा से हुआ। वेदों के आधार पर सृष्टि के आरम्भ में हमारे पूर्वजों ने कृषि करके कृषि विषयक अपने ज्ञान व अनुभव को बढ़ाते हुए प्रगति करते रहे। महाभारतकाल के बाद आलस्य व प्रमाद के कारण वैदिक ज्ञान का सूर्य लुप्त हो गया जिससे सभी क्षेत्रों में अवनति हुई। कृषि क्षेत्र में भी ज्ञान की न्यूनता आई। आज सौभाग्य से सभी क्षेत्रों में ज्ञान की निरन्तर वृद्धि हो रही है अर्थात् विलुप्त ज्ञान का प्रकाश हो रहा है। आज भी कृषि के क्षेत्र में शुद्ध, पवित्र तथा दूषित अन्न के परस्पर भेद का हमारे कृषकों व देशवासियों को ज्ञान नहीं है। यज्ञ व कृषि का परस्पर गहरा सम्बन्ध है, इससे भी विश्व अनभिज्ञ है। यज्ञ व कृषि पर अनुसंधान कर वेद वर्णित विज्ञान को समझना आज के समय की मुख्य आवश्यकता है। यदि हमें वेदानुसार यज्ञ का अनुष्ठान करते हुए कृषि करेंगे तो हमें शुद्ध अन्न प्राप्त होगा जिससे रोग न्यूनातिन्यून होंगे। कृषि कार्यों में वेदों से मार्गदर्शन लिया जाना चाहिये। हमने इस लेख में आर्यजगत के विद्वान स्व. श्री वीरसेन वेदश्रमी जी के ग्रन्थ वैदिक सम्पदा की सामग्री का उपयोग किया है। उनका धन्यवाद कर इस लेख को विराम देते हैं।

**-मनमोहन कुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः09412985121**